International Journal of Applied Research 2015; 1(2): 257-258

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(2): 257-258
www.allresearchjournal.com
Received: 20-11-2014
Accepted: 25-12-2014

डॉ. अरविन्द मैन्दोला
सह–आचार्य, चित्रकला, राजकीय महाविद्यालय, बून्दी, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अरविन्द मैन्दोला
सह–आचार्य, चित्रकला, राजकीय महाविद्यालय, बून्दी, राजस्थान, भारत

चित्रों का मूलाधार :– लय

डॉ. अरविन्द मैन्दोला

सारांश
''विष्णुधर्मोत्तरम्'' और ''शिल्परत्नम्'' में भारतीय सौन्दर्यशास्त्र और उससे जुड़ी कलाओं के सन्दर्भ में चित्रकला का वर्गीकरण, रागात्मक यर्थाथवादी श्रेणी में हुआ है विष्णुधर्मोत्तरम् पुराण में कहा गया है कि, नृत्य कला के आरम्भिक ज्ञान के बिना चित्रों में मनस्थिति की अभिव्यक्ति संभव नही है। चित्र सृजन करते समय रूप, आकार, भाव, एवं वर्ण–योजना का सौन्दर्यबोध लय की ही अनुभूति के समरूप होना आवश्यक है। चित्रकला के सजृन में नृत्य की मुद्रायें एवं भाव भंगीमाओं की गति को मूलाधार माना गया है। भारतीय सन्दर्भ में माध्यम के स्तर पर भले ही अन्तर स्थूल होता है परन्तु चित्र, मूर्त्ति एवं नृत्य के ये संसार लय परम्परा से जुड़े होते है। भारतीय कला के सन्दर्भों का उत्स, शिव को माना गया है। शिव का तांडव, नृत्य भारतीय कला एवं धर्म का शाश्वत् सन्दर्भ है। इसके अनेक अभिप्रायः व रूप कलाओं के विविध विधाओं में मिलते है। जो भारतीय कला के उच्चतम् प्रतिमानों को उजागर करती है।।

मूलशब्दः– रागात्मक यर्थाथवादी, सौन्दर्यबोध, भंगीमाओं, तादात्म, अनुगूंज अभिसार, समानान्तर, सृजन, नायिका–भेद, संवेदना

प्रस्तावना
''विष्णुधर्मोत्तरम्'' और शिल्परत्नम् में भारतीय सौन्दर्यशास्त्र और उससे जुड़ी कलाओं के सन्दर्भ में चित्रकला का वर्गीकरण रागात्मक श्रेणी में हुआ है। चित्रकला को महल–प्रसादों, मन्दिरों एवं निजी आवासों में चित्रण के लिये शुभकारक माना गया है। विष्णुधर्मोत्तरम्'' में कहा गया है कि, नृत्यकला के आरम्भिक ज्ञान के बिना चित्रों में मनस्थिति की अभिव्यक्ति संभव नही है। इसी तरह मूर्तिकला का भी मूलआधार लय या नृत्य माना गया है। इसीलिये कलाकार रंगों से या मिट्टी से सृजन करे परन्तु अभिव्यक्ति लय, सौन्दर्य के बिना सतही एवं सामान्य अभिव्यक्ति बनकर रह जाती है। चित्र सजृन करते समय रूप, आकार, भाव एवं वर्ण–योजना का सौन्दर्यबोध लय की ही अनुभूति के समरूप होना आवश्यक है। भारतीय कला परम्परा में चित्रकला के मूलस्त्रोत एवं प्रभाव का सन्दर्भ–स्थिति और गति के ही रूप देखा जा सकता है। चित्रकला के सजृन में नृत्य की मुद्रायें और भाव–भंगीमाओं की गति को मूलाधार माना गया है।
चित्र या आकार के माध्यम से कोई भी मूर्त्त या अमूर्त्त रचना हमारे मन में गतिशील सृष्टि रचने लगती है और एक बार किसी भी भाव के अभिव्यक्त हो जाने के बाद कला–रचना एक निश्चित आकार और रंग में बिम्बित होने लगती है और दर्शकों का उससे तादाम्य होन पर इन रंगों और आकारों में ध्वनि, लय आने लगती है और शब्दों की रचना करते है और यह सम्पूर्ण प्रभाव मिलकर हमारे मन में नृत्य सी लय का संयोजन बनाते है और रंग, शब्द तथा नृत्य की चेतना एकाकार होने लगती है। माध्यमों एवं विधाओं का भेद होने के उपरांत एक स्तर पर चित्रकला, मूर्त्तिकला, नृत्य की संवेदना एक ही प्रकार के आत्मिक आनन्द का सृजन करती है।
वस्तुतः कहीं ना कहीं हमारे मन की अन्तःचेतना में जन्में संस्कारों, ज्ञान तथा संवेदना के रू॰ में विद्यमान प्रभाव हमारे चाक्षुक सत्य का साक्षात्कार उसी प्रक्रिया में कराते है, जिस प्रक्रिया में एक विशेष परम्परा में विकसित होते है। भारतीय सन्दर्भ मे माध्यम के स्तर पर भले ही अन्तर स्थूल होते है। भारतीय सन्दर्भ में माध्यम के स्तर पर भले ही अन्तर स्थूल होता है परन्तु चित्र? मूर्त्ति एवं नृत्य के ये संस्कार लय परम्परा से जुड़े होते है।
विभिन्न कलाओं के आकार–भेद उनकी अन्तर–निर्भरता के कारण एक स्तर पर गौण हो जाते है। सौन्दर्य के सम्पूर्ण प्रभाव या चेतना का प्रभाव समान ही रहते है। चित्र, मूर्ति एवं नृत्य को लय की वस्तु चेतना से जुड़ा माना गया है। कलाओं का भेद, भाव लय के स्तर पर ना होकर भंगीमा के स्तर पर ही होता है। यह भेद संवेदना के बजाय शिल्प का होता है। भारतीय चित्रकला, नृत्य एवं मूर्त्तिकला के उच्च आदर्शो के रूप में कीर्तिमान गुप्तकाल में बुद्ध, विष्णु, शिव और जैन प्रतिमाओं की अभिव्यक्ति के सौन्दर्य–भाव शिल्प, लय और मौलिक कलात्मकता के कारण उन्हें ऐसे धरातल पर ले

जाती है, जहां दूसरे माध्यम गौण हो जाते है। सभी रूपभेद, नृत्य का भाव, मुद्रायें मूल रूप से उनकी गति एवं स्थिति के ''अनुगूंज'' एक विशेष प्रकार के समान परमानन्द की स्थिति बनाती है।

भारतीय कला के सन्दर्भो का उत्स, शिव को माना गया है। शिव का तांडव नृत्य, भारतीय कला एवं धर्म का शाश्वत् सन्दर्भ है इसके अनेक अभिप्राय एवं रूप कलाओं के विविध विधाओं में मिलते है जो भारतीय कला के उच्चतम् प्रतिमानों को उजागर करती है। सृष्टि में सृजन और विनाश के शिव को ताल, लय, गति से जुड़े विराट स्वरूप की कल्पना कलाकारों की है। वस्तुतः स्थिति और गति के साथ ही भारतीय समय की अवधारणा को देखा गया है, जो कि चक्रीय गति से सदैव चलता रहता है। पश्चिमी विचारधारा में समय की गति को समानान्तर रेखीय–संदर्भ में देखा गया है।

भारतीय चित्रकला के सन्दर्भ में विष्णुधर्मोत्तरम् में चित्रों के सृजन में नृत्य या लय संयोजन की भाव अभिव्यक्ति को आवश्यक तत्व माना है। इस तरह राजस्थानी लघुचित्रकला में बारहमास, नायक–नायिका भेद, अभिसार, विरह, प्रेम, रासलीला के चित्रों की शिष्ठ मुद्राओं एवं नृत्य के भावभंगिमाओं के संयोजन लय की अभिव्यक्ति करते हुये शास्त्रीय आधार प्रस्तुत करते है जो वर्तमान में भी शाश्वत् बने हुये है।

सन्दर्भः–

1. आर.ए.अग्रवाल– कला विलास भारतीय चित्रकला का विवेचन, मेरठ
2. आनन्द मुखर्जी– द हिन्दु व्यू ऑफ आर्ट, लन्दन 1993
3. Gore Fredric. Painting some basis Principles, N.V. Goldstein Harriet.
4. Hayes Colin] Grammer of Drawing N.V.
5. Read H. Meaning of Art, faber 1931.